सीमा का पंछी



शंकर शर्मा 'पिपासु'



उमा-उर्मिला प्रकाशन

सस्नेह

प्रो० श्री रतनलाल 'शान्त'

जी के कर कमलों में

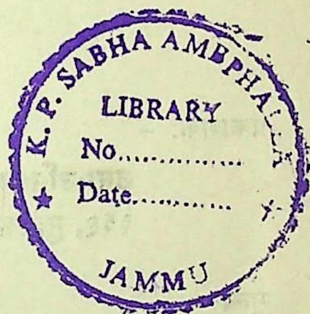
शंकर शास्त्री पिपासु

२१-१-६०



सीमा का पंछी





शंकर शर्मा 'पिपासु'



उमा-उर्मिला प्रकाशन

सीमा का पंछी
कविता संग्रह
रचयता शंकर दास शर्मा 'पिपासु'

प्रकाशक: –

उमा-उर्मिला प्रकाशन
३६६, मुहल्ला जुलाहका जम्मू,

मूल्य:—

तीन रुपये पचास पैसे

प्रथम संस्करण दिसम्बर १९६७

मुद्रक :

आर० सी० प्रिंटिंग प्रेस,
अप्पर बाजार जम्मू।

सीमा का पंछी के प्रकाशनार्थ कलचरल एकादमी जम्मू कश्मीर की ओर से जो आर्थिक सहायता प्राप्त हुई है उसके लिये लेखक आभारी है।
शंकर दास शर्मा 'पिपासु'

मेरे

आत्मज

राम नरेश

तुम्हें कुछ और दूंगा

अभी मैं यह रचना

सीमा का पंछी

अपने मित्र-बन्धु

डोगरी के प्रख्यात कवि

श्री केहरि सिंह मधुकर जी की

शुभकामनाओं

के नाम समर्पित करता हूं

शंकर शर्मा 'पिपासु'

विषयानुक्रमणिका

———

भूमिका

श्री शंकर शर्मा 'पिपासु' का यह दूसरा कविता संग्रह है। इस संग्रह की सभी रचनायें मैं ने पढ़ी हैं। 'पिपासु' जी के जीवन में जो सरलता, सहजता तथा करुणा है वही सरलता, सहजता तथा करुणा उन के इस कविता संग्रह की कविताओं में स्पष्ट दृष्टिगोचर होती हैं। यही पिपासु जी की शैली है। 'जीवन अभिशापों का मेला' पिपासु जी की केवल मात्र यही एक धारणा नहीं है। वह यह भी स्वीकारते हैं कि 'जीवन आग उगलता है'।

इस संग्रह की एक विशेषता यह भी है कि श्री पिपासु जी की एक अपनी दृष्टि है जिस से वे सब देखते भोगते और अपने में अनुभव करते हैं। कोई भी विचार, भाव अथवा अनुभव उन का उधार लिया हुआ नहीं लगता। यह मौलिकता इस संग्रह की प्रमुख विशेषता है।

एक साथी होने के नाते मैं पिपासु जी को उन के इस संग्रह के प्रकाशन पर वधाई देता हूं।

दिसम्बर १९६७

केहरि सिंह 'मधुकर'
जम्मू

अपनी ओर से—

मुझे अपना यह संग्रह प्रस्तुत करते हुए हर्ष हो रहा है।

आशा है कि आप मेरी पहली रचना 'दो चान्द' की तरह इस रचना को भी अपनायेंगे। मैं अपने आप को परम सौभाग्यशाली समझता हूं कि मेरा दिन-रात का यह परिश्रम साकार हो कर आप के कर कमलों में पहुच गया है। इस की परख पड़ताल तो आपने ही करनी है। मेरी ओर से वीणापाणि की जैसी आराधना हो सकी है वैसी ही मैंने की है। अपनी भूलों के लिये क्षमा प्रार्थी हूं। यदि माता सरस्वती की कृपा रही तो भविष्य में भी आप की सेवा करूंगा।

विनीत
शंकर शर्मा पिपासु'
६६९, मुहल्ला जुलाहका
जम्मू तवी।

मंगल कामना

श्री शंकर शर्मा 'पिपासु' के गीतों
का संग्रह 'सीमा का पंछी' देखने का
अवसर मिला। गीतों में काफी
रोचकता है। लेखक के रसीले गीतों
में भावुकता स्पष्ट झलकती है।

मुझे हर्ष है कि यह संग्रह प्रकाशित
हो रहा है। मुझे आशा है कि सरल
हृदय लेखक के गीत जनता में
लोकप्रिय होंगे।

डा० विद्या नाथ गुप्तः
एम० ए० पी० एच० डी०
जम्मू काश्मीर विश्वविद्यालय
(हिन्दी विभाग)

वधाई

"...............

हम मे तो देखा भाला है निर्धन का धन काम ॥"

ऊपर की पंक्ति 'पिपासु' जी की निर्मल आत्मा का आभास करवाती है। मैं पिपासु जी को अपने बाल्यकाल से जानता हूं। जीवन में उन्हें पर्याप्त निर्धनता तथा कटुता से दो चार होना पड़ा है। परन्तु यह वाधाएं उन की साहित्य साधना में वाधा नहीं डाल सकीं। हंसते हुए संघर्षरत 'पिपासु' अथक परिश्रमी हैं और इस के परिणाम स्वरूप आज साहित्य प्रेमियों के सन्मुख 'दो चान्द' के बाद प्रस्तुत है 'सीमा का पछी'—उन की नई रचना।

वास्तव में वह वधाई के अधिकारी हैं।

श्री नारायण मिश्र
३६६, जुलाहका मुल्हला
जम्मू

शुभा कांक्षा

अत्याधिक आनन्द अथवा दुःख की अनुभूति से जब भावुकता चंद्रभागा की पागल लहरों-सी तट के साथ ज़ोर ज़ोर से टकराने लगती है तब काव्य की ध्वनि जन्म पाती है जो कभी वितस्ता-सी शान्त, कभी गंगा-यमुना सी चंचल और कभी ज्वार भाटों की भान्ति गम्भीर भावों का प्रतिनिधित्त्व करती हुई काव्य का रूप धारण करती है।

..... श्री शंकर शर्मा 'पिपासु' हिन्दी के प्रौढ़ कवि हैं। जीवन के बहुत से ज्वार-भाटे इन्हों ने अनुभव किये हैं जिन की अभिव्यक्ति प्रस्तुत कविता संग्रह 'सीमा का पंछी' में हुई है। इन रचनाओं में अलंकारों का सुन्दर-सहज प्रयोग देखने में आता है। बहुत सी रचनाओं में सगीत बध्यता की विशेषता अपना उदाहरण आप है .....।

आशा है कि काव्य प्रेमी जगत श्री पिपासु' जी के प्रस्तुत संग्रह का स्वागत करेगा।

४०२–अम्बफला,
जम्मू तवी।
१६-१२-६७

सुतीक्ष्ण कुमार 'आनन्दम'
साहित्य मन्त्री
हिन्दी साहित्य मण्डल

याचना

मुझ को न तुम संसार दो !
पर जी सकूं जिसके सहारे, प्रिय मुझे आधार दो !!

कब कर सुधा पाया गरल,
जो पी सके जगती सरल,
अब पी वही विष मैं तरल,
जग को बचा इस बार लूं ; प्रिय शक्ति वह इक बार दो ।

घन गरज बज्राघात हो,
अथवा यहां हिमपात हो,
या सनसनाती बात हो,
लू पार कर तर, शक्ति दो, फिर ज्वरित पारावार दो ।

कब इष्ट नेता ही बनूं,
या जग विजेता ही बनूं,
सुख स्वप्न लेता ही बनूं,
नाविक भला उनसे, करे जो पार, सुन करतार लो ।

मुझ को न तुम संसार दो !
पर जी सकूं जिसके सहारे, प्रिय मुझे आधार दो !!



प्रार्थना

देव तुम्हारे इन चरणों में मैं क्या भेंट धरूं ?
मलिन वदन, कृश तन, मन पापी, नैन न नीर भरू !

अरमानों के तूफानों से जीवन नय्या मेरी,
खाती जाती है हिचकोले बीच भंवर में घेरी,
तुम ही कहो, यदि पार करो न, किस विध पार तरूं ?
देव तुम्हारे इन चरणों में, मैं क्या भेंट करू ?

क्यों न अधीर भला हूं, मन में पीर बढ़ी जाती है,
मुस्कानों की मधुर चान्दनी जगको सदा भाती है,
ठुकराए जग, कह दो कैसे मैं दुखदाह हरू ?
देव तुम्हारे इन चरणों में, मैं क्या भेंट धरू ?

तुम ही केवल, केवल तुम ही, बरसा कर करुणा कण,
शान्त करो इस दग्ध हृदय को और मधुर हो जीवन,
गीत अमर गाऊं मैं, वर दो, जग में नेह भरू !
देव तुम्हारे इन चरणों में, मैं क्या भेंट धरू ?

देव तुम्हारे इन चरणों में, मैं क्या भेंट धरू ?
मलिन वदन कृश तन मन पापी नैन न नीर भरूं !



११

गीत

अपनी भूल न माने कोई
सब करते हैं भूल प्रेम की, उसको भूल न जाने कोई ।

यौवन आता मस्तानी हो मुस्काती डाली पर कलियां,
मधु लोभी गुण गुण कर उन पर मंडराती हैं भ्रमरावलियां,
शूल चुभें मधुपों के तन में, भूल न पाते हैं रंग रलियां,
कलियां फूल फूल फिर फूलें, झूम झूम होतीं मनचलियां,
मुरझा कर झड़ने के उर में किन्तु न लाते गाने कोई ।

दीपक शिखा को देख दूर से, शलभ सदा जलने को आते,
रोज़ रात को दीपक जलते, रोज़ शलभ भी जलते जाते,
दोनों को है स्नेह जलाता, पर दोनों कब हैं पछताते,
युग युग से जग देखे, दोनों रोज़ प्रीत के गाने गाते,
पूछो तो, क्यों दोनों जलने को होते बौराने कोई ।

कर पद नयन न दोनों के ही, दोनों भारी दोनों काले,
धातु के टुकड़े दोनों ही किस मस्ती से हैं मतवाले,
छले जा रहे किस छलना से किस छलना के दोनों पाले ?
क्या आकर्षण दोनों में किस ने दोनों पर डोरे डाले ?
लोहे चुम्बक की इन बातों को कुछ तो पहचाने कोई ।



अनुरोध

कितनी बार कहेगा कोई, समता सदा गहो तुम।
स्नेहवारि की मधुर लहर में, बारम्बार बहो तुम॥
प्रति ऋतु आती एक बार ही एक वर्ष के भीतर,
प्रतिफल फलता एक बार ही अपने निज तरुवर पर,
एक बार चढ़ता ढलता रवि दिन में दैनिक क्रम से,
एक बार शशि पूरण होता मासिक बने नियम से,
खो कर समय समुन्नति का निज क्यों पछताओ कहो तुम ?
कितनी बार कहेगा कोई समता सदा गहो तुम।
एक बार ही पिस कर मेंहदी अपना रग दिखाती,
एक बार ही राजहंसिनी जीवन गीत सुनाती,
एक बार ही विष जीवन में शंकर भी पी जाते,
हारिल उड़ते एक बार ही, मर कर भू पर आते,
आता यौवन एकबार, सार्थक कर मुग्ध रहो तुम।
कितनी बार कहेगा कोई समता सदा गहो तुम।
नदिनों में भी नूतन गति है कभी कभी ही आती,
कभी कभी होती हैं वर्षा सुख की जो हर्षाती,
सदा कहां है प्रेम कहानी अपनापन दोहराती,
सदा कहां है भूल प्रेम की अपना रंग दिखाती,
गई मिलन की बेला तो, विरह की आँच सहो तुम।
कितनी बार कहेगा कोई समता सदा गहो तुम।



१३

विवशता

जीवन गीत भला क्या गाऊं ?
भूल गया जब अपने पन को, कैसे किस को फिर अपनाऊं ?

कहता जग पूरब में लाली आशा की है छाई,
पर समझा करता हूँ, सन्ध्या जीवन की मुस्काई,
बुझता जीवन-दीप यहां पर कैसे स्नेह कहां से लाऊं ?
जीवन गीत भला क्या गाऊं ?

जग कहता, राका आई है, रजनी गन्धा है मुस्काती,
समझा करता, अमा निशा भी, आई उसको है रुलवाती,
आंसू फूल गिराती गन्धा, कहां अमरता की निधि पाऊं?
जीवन गीत भला क्या गाऊं ?

अरी अमरते तुझे खोजते मुझ को बरसों बीत गए हैं,
किन विहगों के कल कूजन में तेरे मन के गीत गए हैं,
कह दे कौन कण्ठ किन भावों छन्दों से मैं तुझे रिझाऊं?
जीवन गीत भला क्या गाऊं ?

भूल गया जब अपने पन को, कैसे किसको फिर अपनाऊं ?
जीवन गीत भला क्या गाऊं ?



गीत

खोज खोज युग लोचन हारे !
मन की शान्ति, कान्ति यौवन की,
भ्रान्त रहे पर नयन बेचारे !!

अपलक रह कर, नीर बहा कर,
निद्रा अव्याहार्य्य बना कर,
बरसों अपना आप जला कर,
विकल व्योम-तारक-दृग-तारे !
खोज खोज युग लोचन हारे !

खोज चुके जब शान्ति-निकेतन,
अपने मन के प्रिय जीवन धन,
तत्क्षण मन में यह परिवर्त्तन,
हुआ अचानक, वे तो न्यारे !
खोज खोज युग लोचन हारे !

मन की शान्ति, कान्ति यौवन की,
भ्रान्त रहे पर नयन बेचारे
खोज खोज युग लोचन हारे !



१५

जीत

जब से मेरी जीत हुई प्रिय !
करुणा मेरी मीत हुई प्रिय !!

पुलकित मन, रोमाञ्चित हो तन,
अंग प्रकम्पित हो गए तत्क्षण,
श्वास श्वास में स्वत्त्व समर्पण,
कैसी अद्भुत प्रीत हुई प्रिय ?

नव रस, रस नव, मिश्रित वाणी,
भोले प्राणों वाला प्राणी,
लगा बोलने तत्क्षण रानी,
गाथा अनुपम गीत हुई प्रिय !

अब क्या मुझे सुझाने आई ?
मन की लगी बुझाने आई,
गाते गीत सुलाने आई,
क्या यह अमरता रीत हुई प्रिय ?

जब से मेरी जीत हुई प्रिय !
करुणा मेरी मीत हुई प्रिय !!



जिज्ञासा

है वह कौन सी मुस्कान ?

देख जिस को मुस्कराते हैं सुमन अनजान ।
और प्राची में उषा ले लालिमा छविमान,
नित नई जग को दिखाती मधुर मृदु मुस्कान,
दामिनी मिस घन तिमिर में जलद हो द्यु तिमान,
अनुकरण करते कभी हैं विश्व में पवमान,
हरितिमा से हरित होकर मेदनी चहुं ओर
है न फूली ही समाती देख जो मुस्कान,

है वह कौन सी मुस्कान ?

सुन जिसे निर्झर झरों ने हो निनादित प्राण
कर दिये अपने समर्पित, बह रहे अनजान,
और कोयल कूक उठती गूंजता उद्यान,
कुहकते हो विकल केकी तड़पते अरमान
विकल करते प्राण होकर विकलता लयमान,
नाचते दे ताल दल मिस विटप झूम अजान,
पीर होती मधु मधुरतर भूलता सब ज्ञान ।

है वह कौन मधु-सा सान ?

पी जिसे उन्मत्त हो हो नाचते अरमान ।
घूमते दिनकर सुधाकर दिवस निशि अविराम,
और तारक झिलमिला कर मूक गाते गान,
पवन लेकर सुरभि यश-सी दौड़ती चहुँ ओर,
वह सखी झकझोर कलिका है जगाती आन,
जाग कलिका खिलखिलाती है दिखा मुस्कान,
देख जिसको हैं सखे ये मुग्ध होते प्राण !

है वह कौन छवि-रसपान ?

गीत

मेरा रोम रोम क्यों रोता ?
रोते रोते बह जाता है आंसू का नित नूतन सोता !

प्रात सवेरे ऊषा आती, ओस रूप मोती बिखराती,
धरती की छाती सज जाती,
पर मेरी छाती के भीतर दिल के दूने जलें फफोले,
जिनकी पीर भुलाने को मैं, नित्य गरल पी बेसुध होता!
मेरा रोम रोम क्यों रोता ?

आती ले रजनी अलबेली. तारों की मुस्कान पहेली,
और लिये संग नींद सहेली,
जो बहलाती है दुनिया को, किन्तु न मुझको सहला पाती,
बहला पाती नहीं हास से, अपलक रह अपना मन खोता!
मेरा रोम रोम क्यों रोता ?

वह देखो तो बदली आई, बिजली की मुस्कानें लाई,
घन-रव-वाद्य-सुधा सरसाई,
पर मेरे मन के मयूर को, जाने कौन, न क्यों कर भाई,
उलटी दुख की ज्वाला बढ़ती जीवन भार रहा यों ढोता!
मेरा रोम रोम क्यों रोता ?



१९

हार

मेरी जीत भरी वह हार
थी कल तक, पर तुम ने, मेरे तोड़े मन के हार !

करता था जब कठिन तपस्या,
सुलझाने को विश्व समस्या,
तब तुमने ही कहा, विकृत मन का था विकृत विकार।
मेरी जीत भरी वह हार।

शूल चुभा यह बोल उठा मैं,
भाव-तुला-जग तोल उठा मैं,
फिर भी तुम ने कहा, भेद क्यों खोल रहे घर बार ?
मेरी जीत भरी वह हार।

अब क्या मुझे रिझा पाओ गे ?
छलना भेद छिपा पाओ गे ?
छलना-भेद छिपाया भी तो क्या पाओ गे प्यार ?
मेरी जीत भरी वह हार।



हार-जीत

उस हार से क्या, उस जीत से क्या

जिस हार से मन के तार नहीं
संगीत सुधा बरसा पाएं
जिस जीत से पुलकित प्राण नहीं
एकाकी ही तो हो जाएं,
उस हार से क्या, उस जीत से क्या

जिस हार से प्रिय के चरणों पर
होकर विह्वल नहीं लौट सके,
जिस जीत से चाह सभी मन की
अर्पित प्रिय जन को हो न सके,
उस हार से क्या, उस जीत से क्या

जिस हार से हार न हो पाए
उस मंजुल मोहिनी मूरति के,
जिस जीत में हार बना न सके
प्रिय को प्रिय की प्रिय मूरति के,
उस हारने वाली प्रीत से क्या
उस जीतने वाले मीत से क्या
उस हार से क्या, उस जीत से क्या

आसव

प्राणों का आसव व्याकुल हो
जीवन शराव से ढलक रहा,
पीले कोई कोई पीले
कहता, छल छल कर छलक रहा।

कोई तो करगत कर इसको
पी लेता हंसते अधरों से,
कोई तो मन बहला लेता
दो पल इस मधु की बून्दों से।

क्या कहते कटुता है इस में
क्या कटुता जीवन-सार नहीं ?
पर इस कटुता के संग संग
मादकता का संसार यहीं।

वह जीवन भी क्या जीवन है
जिस में कटुता का प्यार नहीं,
पर हो कटुता के संग सग
मादकता का संसार नहीं।

इस मादकता के कारण ही
कटुता को भी मधु कहते हैं,
मधु लेने वाले कटुता को भी
संग संग ही गहते है।

उठते सुख दुख बुद्बुद तरंग
कहते जाते अपना लो ना,
पी लो, पी लो धीरे धीरे
फिर सुख दुख का सपना लो ना।

हम मिट जाने को बनते हैं
पर मादकता जग को देते,
जो मादकता देवाधिदेव
शकर पी विष अपना लेते।

जो विष न सके पी शंकर सा
वह इस विष को पी लेता है,
कहता जग इसको गरल किन्तु
वह मधु कह, पी, जी लेता है।



परीक्षा

और न लो प्रभु, कठिन परीक्षा !

क्या कहते हो, मोम आग के पास रहे पर पिघल न पाए ?
क्या कहते हो, बीच भंवर के नाव रहे, पर डूब न जाए ?
ज्वलित तप्त लावा, ज्वाला मुखी पर्वत में आ फूट न जाए ?
उड़ती दूर पतंग व्योम में, आंधी आए टूट न जाए ?
हाय, विषमता में इस जगके होगी कैसे अधिक प्रतीक्षा !
और न लो प्रभु कठिन परीक्षा !

रच उद्यान मनोहर तुम ने सुन्दर सुन्दर फूल उगाए,
गुण गुण करते भ्रमर सांवले उन पर तुमने आन बिठाए,
क्या कहते हो केवल उन का रूप निहारें ? प्यासे रह कर?
छलक रहा किस हेतु कहो तो मधु सुमनों में अहरह बह कर
मेरे प्रभु मेरे प्रभु तुमही, कुछ तो इस की करो समीक्षा !
और न लो प्रभु कठिन परीक्षा !

दी यदि प्यास पपीहे को तो, जलद बनाया प्यास बुझाने,
पर स्वाति की अवधि लगाई, चातक की रट पीव कहाने,
केवल रूप रूप लख कर क्या सुन्दर शिव की टेर लगाऊं ?
रहूं 'पिपासु' रूप सुधा का तृप्त न हूं, क्यों देर लगाऊं,
तुम ही कह दो, हाय विषमतम दृश्य यह कैसे जाए निरीक्षा!
और न लो प्रभु, कठिन परीक्षा ।



छलना

जाने किस मधु छलना से
पीड़ित पीड़ित प्रतिपल है मन,
घेर रही ज्यों मरु भूमि को
तपन शुष्कता पी जल-धन।

है इच्छा ही तो पीड़ा कर,
इच्छा ही न सदा सानन्द,
इच्छा हीन रहूं यह इच्छा
भी तो कर देती मन मन्द।

जब इच्छा करता हूं ऐसी
सूझ न पाता कोई उपाय,
घेर लिया करते संसारी
कर न कहीं कुछ पाता हाय।

यह असार ससार सार-सा
सूझ न पाता कहीं अजान,
कहा किसी ने है ससार
संसार यही जानो छविमान।

इच्छा ही से तो आशा है,
आशा जीवन का जीवन,
जीवन इच्छा हीन कहो तो
जी सकता है कितने क्षण।

२५

यों मन की संसारी की
मैं टाल न सकता कोई बात,
विजित पराजित होते, करते
जाते, प्रतिपल फिर भी घात।

मैं इन में यों पिसता रहता
ज्यों धरती पाताल व्योम में,
जाने कब तक हुआ करूंगा
हवि-सा अर्पित जगत-होम में।



चाह

वह मुझ को, मैं उस चाहूं,
उस ने उस को चाहा,
इन चाहों ही चाहों में
ससार हो रहा स्वाहा।

चाहों के बदले में कब
चाहों को चाह मिली है ?
हाय, चाह के बदले में
तो उलटी आह मिली है !

हाय कभी ऐसा हो जाता चाह न होती जग मैं,
चाह न होती विश्व न रोता आह न होती जग में।
बड़े भाग्य से किसी चाह को चाह मिली जो होगी,
विश्व बिखेरे पथ में कांटे कहलाये वह योगी।

ऐसा योग न भाता मुझ को
मैं अच्छा उद्योगी,
काम राम दोनों ही मुझ में
भले रहूं मैं भोगी।



जवानी

दोनों ओर जवानी जलती !

दीप जला कर फूंक दिये पर परवाने के इस दुनियां ने,
उड़ न सकें, छू सकें न लौ तक, हम मस्ताने इस दुनियां के।
अल्हड़ सदा जवानी खलती !

परवाने को जलना ही तो जलने भी क्यों दिया नहीं है,
मधुर प्यार का प्यार हृदय में पलने भी क्यों दिया नहीं है।
उलटी यहां निराशा पलती !

दोनों ही संग संग रहते हों, दोनों ही संग संग बहते हों,
प्यार भरी बातें कहते हों दोनों संग सुख दुख सहते हों।
फिर न कहो, क्यों भुज भर मिलती ?

अनहोनी बातें करते हैं ढूंड रहे उसके प्रियतम को,
मेरी आँखों देख न पाते ढूंड रहे मेरे प्रियतम को।
यों बे जोड़ जवानी ढलती !
दोनों और जवानी जलती !



आधार मेरा

चित्रमय संसार तेरा !

रंग सुख दुख कल्पना की तूलिका से
रंग गया सचमुच हृदयपट आज मेरा !

भावना का भ्रमर जिस में गूँजता है,
कल्पना सौन्दर्य जिस में झूमता है,
चाह का मधु सरस सुमनों में भरा है,
पा जिसे प्रिय धन्य होती यह धरा है,

हो गया चिरमुग्धकर आधार मेरा—
चित्रमय सँसार तेरा !

क्यों मुझे अब चाह होगी स्वर्ग की भी,
देखता झांकी यहीं अपवर्ग की भी,
कौन देखेगा कहां मधुपर्व होगा ?
जब यहीं कैवल्य का सुख सर्व होगा,

हो गया प्रिय आप करुणागार मेरा—
चित्रमय संसार तेरा !

अस्त होकर फिर उदय होता दिवाकर,
शून्य होकर पूर्ण फिर होता सुधाकर,
दिवस निशि ऋतु लौटते फिर आ रहे हैं,
स्वत्त्व खोकर स्वत्त्व फिर भी पा रहे हैं.

फिर न क्यों रुचिकर हो यह व्यापार तेरा—
चित्रमय संसार तेरा !

रँग सुख दुख कल्पना की तूलिका से
रंग गया सचमुच हृदय पट आज मेरा ।
चित्रमय संसार तेरा !

मेला

मन में अरमानों का मेला।
देखो कितनी भीड़ लगी है चाहे हूँ मैं निपट अकेला ॥

भूल गया मैं अपनेपन को,
भूला जग के आकर्षण को,
भूला भाषा मृदु वर्षण को,
मेरे तेरे पन का अब तो रहा न बाकी शेष झमेला ॥
मन में अरमानों का मेला।

तेरा ही तो प्यार रहेगा,
तेरा ही शृंगार रहेगा,
तेरा सब निशिवार रहेगा,
मेरे भावों में, छन्दों में, मेने गीतों में अलबेला ॥
मन में अरमानों का मेला।

मैं था प्राणी ठुकराया सा,
लिये अकेलापन आया था,
किसने मुझ को अपनाया था,
केवल तुमने, मुझ सदोष को, अपनापन दे किया दुकेला ॥
मन में अरमानों का मेला।



याद

केवल याद लिये जाता हूं,
पीता आँसू गम खाता हूं ।

मैं ने तो समझा था रानी मन की प्यास बुझा पाओ गी,
मैं ने तो समझा प्राणों का आकुल देश बसा पाओ गी,
भरसक भूले भटके भूखे मन ने प्यार न पाया रानी,
आई वेला विदा, न कुछ तो गीत मिलन का गाया रानी,
अब तो होंठ सिये जाता हूं ।

क्रीड़ा नहीं, नहीं, हां पीड़ा मन का गीत बने गी अब तो,
आशा नहीं, निराशा ही तो, मन की मीत बने गी अब तो,
आए वर्षा, मधुऋतु, मन के सुमन न मेरे खिल पाते हैं,
पर हां आँसू, ओस कणों मिस नयन जलज युग बरसाते हैं,
जो हर रोज़ पिये जाता हूं ।

इन अधरों की, इन आंखों की मुझे कसम है मुझे कसम है,
इतना ही तो कहना क्या बस नहीं अलम है नहीं अलम है,
प्यार जिताया दो पल मुझको अरमानों में आग लगा दी,
भूलूं कैसे उन्हें जिन्हों ने मन की सोई भूख जगा दी,
इतनी बात किये जाता हूं ।
केवल याद लिये जाता हूं ।



भला हुआ

भला हुआ मैं तुझे चाह कर इस दुनियां का भूल गया,
बुरा हुआ पर अब तेरे बिन है यह जग बन शूल गया।

तुझे भुला दूं, भुला सकूं क्या तेरा मादक प्यार प्रिये?
प्यार भुलाने से न भला क्या होगा जीवन भार प्रिये ?

भार वहन कर सकता हूं मधु प्यार भरा मनुहार भरा,
बिना प्यार के सहा कहां कब किसने है भव भार भला।

कभी भूल से भूल न पाता तेरा मादक प्यार प्रिये,
प्यार न भूले भूले कैसे तेरा मधुराकार प्रिये।

इसी भूल से कभी भूल कर याद कभी जो आती हो,
मुझे भुला दो कहते कहते क्यों मुझ को तड़पाती हो।

तुझे भुलाना ही था फिर क्यों मुझे भूल में भटकाया,
क्यों मेरा अति सरल हृदय यह मधुर स्नेह से उकसाया?



भला हुआ—२

भला हुआ तुझ से मिलने का मुझको अवसर नहीं मिला,
भला हुआ यह मेरा मानस शतदल भी जो नहीं खिला,
अमिताभे ! तव कान्त करों से, मेरा शतदल खिल जाता—
तो न भला क्या उसके रस से मन मधुपों का हिल जाता ?

मन रजन भ्रमरों का गुंजन अपनापन सुन सुन धुनता,
पलक पांवड़ों से जग दुख के कांटे कौन भला चुनता,
किन्तु कहो क्या अच्छा होता मधुपी मधुरस लेने को
मेरे मानस क्रोड़ासन पर बैठ मुझे रस देने को—

—गुण गुण गाता गीत सुहाने, इतने में दुख की रजनी
आती, मुझे सुला देने को, अपनापन खो, बन सजनी,
अरुण दलों से पंखों को कर बन्द नींद से मदमाता
हो कर सो जाता, मधु लोभी भ्रमर मुझी में बन्ध जाता।

इतने में सहसा मदमाता काल नाग आ घेर मुझे,
कर में लेकर, तोड़ मुझे, कर देता भू पर ढेर मुझे,
अपने भारी भरकम पग से रौंद कभी न क्या देता ?
तब उसकी क्या हालत होती ? जो मुझ से आ रस लेता !



भला हुआ—३

भला हुआ जो कह न सका मैं तुझे एक भी बार, प्रिये !
भला हुआ जो हो न सका मैं, एकाकी बलिहार प्रिये !
भला हुआ जो पा न सका मैं, तेरा मादक प्यार प्रिये !
भला हुआ जो खो न सका मैं, निजता का संसार प्रिये !

होता यदि उपरोक्त सभी कुछ
होता जग का भार न क्या ?
पागल पागल कह कह मुझ को
ठुकराता संसार न क्या ?

फिर भी कभी कभी आ जाती तेरी मादक याद, प्रिये !
फिर भी कभी कभी भर देती तेरी छवि उन्माद, प्रिये !
फिर भी कभी कभी हो जाता सपनों में साह्लाद, प्रिये !
फिर भी कभी कभी बस जाता, मन का घर बरबाद, प्रिये !

पर तत्क्षण ही भर जाता है
उर में विषम विषाद, प्रिये !
पागल पागल कह कह निज को
रोता मन बरबाद, प्रिये !

जान गया जग कहे जिसे पागल, वह पागल नहीं, प्रिये
अपनेपन में समझे निज को पागल, पागल वही, प्रिये
जिस ने जग के डर से पाया प्यार न मादक कहीं, प्रिये !
जिस ने खोई कभी न निजता है वह पागल सही, प्रिये !

अब पागल होकर भी पागलपन
वैसा यदि कभी मिले,
तो मेरे मन की मुरझाई
कलिका सचमुच तभी खिले।

जग का भार भला क्यों लूंगा खोकर मन का भार, प्रिये !
जग का पागल भले बनूं मैं, पा कर तेरा प्यार, प्रिये !
तू मुझ में बस जाती होता तुझ में मैं साकार, प्रिये !
तो न भला क्या होती जगती तब हम पर बलिहार, प्रिये !

जैसे राधा कृष्ण राम सीता
पर जगती मुग्ध हुई,
मुग्ध हुई बलिहार हुई उनपर,
पर मुझ पर क्षुब्ध हुई !



भला न होता

भला न होता मिट जाता यदि तेरा विषम वियोग, प्रिये
भला न होता भोग लिया करता इस भव के भोग, प्रिये
भला न होता मिला न होता यदि प्रेमी का रोग, प्रिये
भला न होता सुख में रह कर भूल जगत के सोग, प्रिये

पा कर तुझ को याद न तेरी
यदि कुछ मन को तरसाती,
तो मेरी क्या भाव लहर कुछ
अपनी मौज दिखा पाती ?

भूल न जाता यदि अपनापन, तो क्या भूल न करता मैं
किस की मधुर याद ले उर में, गीत हृदय में भरता मैं
एकाकीपन में फिर कैसे समय-वारिधि तरता मैं
इस जीवन की विषम लहर पर पग धरता भी डरता मैं

तुम ही हो जिस ने उर में भर
गीत हृदय को सरसाया,
तुम ही हो जिस कारण शंकर
दरस 'पिपासु' कहलाया !

अब उमड़ा है सागर उर में प्यार भरा मनुहार भरा,
अब यह झूठा सपने सा जग भी लगता है खरा खरा,
कह असार संसार विबुध रोता है देखो खड़ा खड़ा,
कह ससार संसार सुमन मन नित होता है हरा हरा,

यों जीवन संघर्ष जिसे कहते
हैं ये दुनिया वाले,
जाता है अब बीत सुखों की
मद के पी पी कर प्याले।

गीत

अब जाना है पाप किया था।
तुझे जान कर अनजाने में, विरह का अभिशाप लिया था।

तेरी मुस्कानों से समझा मन की कलिका मुस्काए गी,
तेरे मधुगानों से समझा दिल की दुनिया बस जाये गी,
तेरा बस क्या, बस जग के हो, बस उलटा संताप लिया था।
अब जाना है पाप किया था।

अब भी इच्छा रह रह होती मुस्कानों के गीत सुनाऊं,
अब भी आशा हँस हँस कहती उजड़ा मन का देश बसाऊं,
एकाकीपन लख मन रोता, तब क्यों अपना आप दिया था,
अब जाना है पाप किया था।

अब इस मन को कौन संभाले, कौन प्रीत के गीत सुनाए ?
बे दरदी जग दरद न जाने, योगी बन पाखण्ड दिखाए,
पछताऊं, जीवन-पुस्तक में, क्यो प्रेमाक्षर छाप दिया था ?
अब जाना है पाप किया था।

तुझे जान कर अनजाने में, विरह का अभिशाप लिया था।
अब जाना है पाप किया था।



गीत

मैं भूल न पाता उस दिन को
जिस दिन तुमने अपनेपन से भर पूत किया था तृण तृण को ।

उस दिन जिस दिन तुम मुस्काईं, उपवन की कलियां चटक उठीं,
उस दिन जिस दिन तुम ने गाया, मदमाती कोयल कुहुक उठी,
उस दिन जब प्यार हुआ तुम से, दुनिया हो प्रेमी बहक उठी,
जब तेरी सुरभित सांसों से, थी सारी दुनिया महक उठी,
चुम्बन का जब मधुदान किया–क्या भूलूं ? बोलो ! उस क्षण को?

अब भी कलियां चटका करतीं, अब भी तो कोयल गाती है,
पर मेरे इस भोले मन को, सजनी वे तनिक न भाती हैं,
क्या बात कहो सचमुच तुम में जो सुख इन में भर जाती है,
जिस बिन नीका भी सब फीका जिस बिन सब सृष्टि लजाती है,
बोलो फिर कब सरसाओगी हर्षाओगी आकर इन को ?

वह दिन कैसा सुखकर होगा जिस दिन फिर जन हर्षाओगी,
वह दिन कब फिर फिर आयेगा जब रूप सुधा बरसाओगी,
वह दिन फिर क्या सचमुच होगा जिस दिन फिर गीत सुनाओगी,
वह दिन सचमुच फिर कब होगा जब जग में रस भरजाओगी,
दिन जीवन के अथवा कह दो अब बीतें कौन प्रयोजन को ?
मैं भूल न पाता उस दिन को ।



दोष—१

इस में मेरा दोष न मानों।
क्यों गाता हूं इतना जानों।

भोले भाले सरल बाल जब अपने अपने सहचर से मिल,
तन्मय हो हो खेल खेल में फिरकी से फिर फिर कर फिर फिर
आह्लादित हो गाने गाते—मुझ में गीत जगा जाते हैं,
जिनको सुन तुम रोष न मानों।
क्यों गाता हूं इतना जानों।

अल्हड़ सी अलबेली सी जब कोई अपने प्रिय प्रियतम का
होकर हार, हार जाती है, अधर अधर पर धर कर जिस पल,
कर मनुहार रिझाता है, जब हँस देती वह, हँस देता मैं,
पर क्यों तुम परितोष न मानों।
क्यों हँसता हूं इतना जानों।

हा दुश्काल बुरा हो तेरा, बे घर बार कोई अबला हो—
—जब राशन को हाथ पसारे, अन्न मांगती भूखी रह रह।
अस्थि मात्र लख निज शिशु को ही रोती, मुझको हाय रुलाती!
तुम ममता का जोश न जानों।
क्यों रोता हूं इतना जानों।



दोष–२

इसमें मेरा दोष न मानों ।
क्यों गाता हूं इतना ज़ानों ।

कलियों को जब चूम-चूम कर प्रिय समीर मधुगाने गाता,
बह जाता हो हो मतवाला, बहते बहते मुझे स्पर्श कर,
मुझ में नितनव भाव जगाता, जिन को बेसुध हो गाता मैं,
चाहे तुम सन्तोष न मानों ।
क्यों गाता हूं इतना जानों ।

जब समीर झकझोर कली को छेड़ छाड़ कर आन जगाता,
बेबस होकर मस्ती में बह, चूम चूम कलियों को, कलियां
झूम झूम कर खिल खिल हँसतीं, देख उन्हें हँस देता मैं भी,
पर मुझ को मदहोश न जानों ।
क्यों हँसता हूं इतना जानों ।

जलद बहाने है नभ रोता, रोती धरती शबनम के मिस,
अचल आपगा व्याज रो रहे, सागर के आंसू मोती बन
सीप नयन में जम जाते हैं, वे ही तो हैं मुझे रुलाते,
मैं आंसू का कोष, न मानों ।
क्यों रोता हूं इतना जानों ।
इस में मेरा दोष न मानों ।



बन्धन—१

बन गया अमरत्त्व, मेरा आज बन्धन !
कोकिला की कूक सुन कब हूक उठती थी हृदय में,
प्रेम जलनोच्छ्वास से कब लूक लगती थी हृदय में,
था कहां तब विश्व के हित मधुर मेरा करुणा गायन,
कर रहा मन प्रेम से था दिवस निशि जब रे पलायन,
अब हृदय की हूक मेरी, हो उठी है मधुर क्रन्दन !
बन गया अमरत्त्व, मेरा आज बन्धन !

वायु-कर से स्पर्श कर तन आज पुलिकत कर दिया है
स्रोत-स्वर कल कल सुनाकर राग उर में भर दिया है,
राग-रंजित अरुण प्राची नव दिखा मन हर लिया है,
सकल सुमनों की सुरभि से स्वतन सुरभित कर दिया है,
सरसता सरसा किया है सरस मन यह आज उन्मन ।
बन गया अमरत्त्व, मेरा आज बन्धन !

अब प्रणय के गीत मेरे हो रहे हैं अमर देखो,
जीत किस की हार किस की प्राण प्रिय का समर देखो,
प्रेम-बन्धन में किसी के जगत का सुख खेलता है,
खेलता है प्राण जिस में, प्राण प्रिय का नगर देखो,
बार शत होकर निछावर पा लिया प्रिय अमरता धन !
बन गया अमरत्त्व, मेरा आज बन्धन !

बन्धन—२

एक बन्दी तोड़ता है निगड़ बन्धन,
विकलता से आह भर कर मुक्ति के हित ।
एक प्रेमी जोड़ता है प्रेम बन्धन,
मधुरता से चाह धर कर मुक्ति के हित ।
एक को दुख रो उठा है आह बन कर,
एक को सुख हो उठा है चाह बन कर ।
उधर मर मर पल्लवों की रुदन सी है,
इधर सर सर पल्लवों की मोद सी है ।
उधर बिन्दु ओस कण के अश्रुमय हैं ।
इधर बिन्दु तुहिनकण के मुक्त मय हैं ।
इधर पीली चान्दनी ही बन गई मनकी उदासी,
उत वसन्ती चंद्रिका ही है उसे प्रिय की विभासी
इधर कोयल कूकती तो हूक उठती,
कूक कोयल सुन उधर प्रिय मूक हँसती ।
देख पाया अन्त में हूं आज बन्धन,
है बना गायन उधर तो इधर क्रन्दन !



गीत

यदि वे एक बार अपनाते,
तो क्या मुझ को बार बार बलि होते देख न पाते !

मैं ने था जितना अपनाया, उतना ही मुझ को ठुकराया,
कब पर स्नेह वारि बरसाया, उलटे मुझे सताते !

यदि वह दरस परस कर पाए, सरसिज छोड़ भ्रमर कित जाए,
वहीं बैठ क्यों प्राण गँवाए ? यह भी नहीं मन लाते !

दीपक ने है स्नेह जलाया, केवल जलना रूप बनाया,
तिस पर परवाना भी आया, फिर दोनों जल जाते !

जीवन दाता नीर मीन का, देख धर्म पर मीन दीन का
हुआ अचानक विरह हीन का, देखा प्राण गँवाते !

मुझे जलाएं अच्छा ही है रूप प्रेम का अन्य यही है
जलन प्रेम की रीत रही है, हम दृग जल बरसाते !

यदि वे एक बार अपनाते,
तो क्या मुझ को बार बार बलि होते देते देख न पाते ।



बेबस आँखें

इन आंखों का दोष न मानों।

रूप तुम्हारे में आकर्षण,
नित नित करता अमृत वर्षण,
विधिवत जब हो जाता दर्शन,
देखूं न देखूं का असमंजस होता मन में, पर सहसा ही,
तेरी ओर फिरा करते दृग, सजनी इस में रोष न मानों।
इन आंखों का दोष न मानों।

चन्दा जब यौवन पर आता,
अपना मधुमय हास दिखाता,
तब सागर भी है लहराता,
कौन कहा करता तब उस को, भर उमंग मन में लहराओ,
बेबस है सागर का उर भी, चाहे तुम संतोष न मानो।
इन आंखों का दोष न मानों।

गीता का मधु गीत यही है,
चाहो तो मधु प्रीत यही है,
जीवन की शुभ रीत यही है,
तुम मुझ में बस जाओ, तुम में मैं बस जाऊं, दिल की राहें
तेरे मेरे दृग हैं केवल तुम, इन को मदहोश न जानों।
इन आंखों का दोष न मानों।

बन्दर

बिल्ली बिल्ली आँखें, चेहरे लाल लाल, छोटे कद,
भूरे पीले बालों वाले टोलियों में आते हैं
आँगन में कभी, कभी कोठों पर और कभी,
विपट भिंझोड़ उन पर चढ़ जाते हैं
बड़े फुर्तीले और बड़े ही हठीले,
कभी नज़र चुराते कभी रोऽब जमाते है
गूँधता हो आटा, कोई रोटी हो पकाता,
कोई बैठ कर खाता, रोटी छीन २ खाते है

कूदते हैं, फाँदते है, डालियों पै नाच नाच,
भर किलकारी बड़ा ऊधम मचाते हैं
छेड़े गर कोई, कोई डंडा भी दिखाए,
झट टोलियों की टोलियों में धावे से भगाते हैं
पीस पीस दान्त, कभी घूर घूर देख देख,
राहियों को राह में ही हम क्यों डराते हैं
चुपचाप खाना दे दो, बन्दर नहीं हैं हम,
कानन, के मानव या वानर कहाते हैं

ढाक के पात

प्रभो है कितने दुख की बात !

किया था रावण का संहार,
आर्य्य संस्कृति का पुनरोद्धार,
राम बन तुम ने, हां, उस बार,
मिटाया पाप धरनि का भार,
न हो पाई फिर भी कुछ ज्ञात, जगत को पाप पतन की बात ।
प्रभो है कितने दुख की बात !

कंस दुर्योधन औ, शिशुपाल
फुलाते रहे सदा जो गाल,
तथा मगधेश जरा' के काल
बने तुम ही थे प्रभु गोपाल,
रहा फिर भी रहस्य अज्ञात—जगत के पाप पतन की बात ।
प्रभो है कितने दुख की बात !

तथागत बन कर फिर भगवान,
सुना समता संदेश महान,
अहिंसा का कर के सम्मान,
दिखाया सत्य - पंथ अनजान,
मिटाया भेद मूल जो पाप, हुआ फिर भी तो उल्कापात ।
प्रभो है कितने दुख की बात !

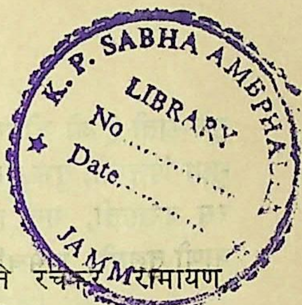
सहस्त्रों वर्ष गए हैं बीत,
न बनता प्राणी-प्राणी मीत,
प्रसारित है यह कैसी रीत
हुई जो मुझ हित गीतातीत,

दिखा दो न अब भी अवदात,
सत्यपथ का जग को वह प्रात,
न कहना पड़े मुझे हे नाथ !
प्रभो है कितने दुख की बात !
वही फिर तीन ढाक के पात !

प्रभो है कितने दुख की बात !



तुलसी दास



गाया जीवन-गान अनोखा तुलसी ने रचकर रामायण,
ज्ञान-किरण का भास कराया जग के खोल हृदय-वातायन ।
कलित कला से दिव्य प्रभा से कर आलोक हृदय के भीतर,
नव रस पूरित महाकाव्य रच, तुलसी अमर हुये मर जी कर ॥

चित्रित जीवन संघर्षण कर यथातथ्य पर काव्य छटा में,
चपला चमका कर दिखलाई सावन की घन श्याम घटा में ।
वह रामायण जिस की तुलना हम उस सागर से कर सकते,
जिस में डुबकी मार अनेकों रत्नों से हम घर भर सकते ॥

भारत का इतिहास सुपावन भावन जनजन मन हितकारी,
सामाजिक राजनैतिक दीक्षा देने वाली सुन्दर न्यारी ।
आद्योपान्त जिसे पढ़ पढ़ कर बार बार हम हैं सुख पाते,
सुख पाते हैं, गुण गा गा कर तुलसी का पर नहीं अघाते ॥

राम चरित है पोत, बने उद्यान प्रकृति के जिसमें सुन्दर,
रंक कोई सम्राट कोई हो बैठे जो भी इस के अन्दर ।
भवसागर से पार उतर कर महामिलन का सुख पाता है,
सुख पाता है, मोद मनाता, तन्मय तन्मय हो जाता है ।

सूलझाती है जो जीवन की जटिल समस्याएं जन जन की,
सुधा पिलाती, बुझ जाती है, अरे पिपासा जिस से मनकी ।
रस बरसाती, मन हर्षाती, कभी रुलाती कभी हँसाती,
वाणी तुलसी; रामचरित की, मन के सोये भाव जगाती ॥

कुटी अटारी रंक महाधिप तृण वीरुध सागर सरिताएं,
गह्वर गुहा महीधर निर्जन और मरुस्थल सकल दिशाएं।
भूमण्डल ब्रह्माण्ड पिण्ड की आलोकित उस अर्क किरण से,
जिसकी पैनी दीठ पैठती अन्तस्तल में है जन जन के ॥

तुलसी वही, वही तो तुलसी, कवि वर नायक जीवन गायक।
है जिस का साहित्य अमर औ' युग युग होगा विश्व सहायक
मंगल कारक, जीवन तारक, विघ्ननिवारक, सबसुख दायक,
आज उसी का अमर दिवस है, जगती का जो शान्ति प्रदायक ॥



देश को मान दो

राष्ट्र की मृत्तिका मांगती है लहू,
दे लहू लो बचा देश की आन को ।

प्राण दो गे अगर प्राण पा जाओ गे,
आन बच जायेगी, शान बढ़ जायेगी ।
वीरता धीरता की कहानी सदा,
जग में रह जायेगी, अमर हो जायेगी ।।

प्राण देने तो हैं, प्राण दे दो योंही,
प्राण देने का अब है समय दान दो ।

कोई हमला करे वीर चुप साध ले,
कोई कायर न कैसे कहेगा उसे ।
कोई जैसे को तैसा न दे जो बता,
जो पड़े सीस पर वह सहेगा उसे ।।

धीरता धार कर देश रक्षा करो,
वीर बन कर सुनो, खोल कर कान दो ।

गीत गाए गए प्रीत की रीत के,
गीत गाए गए देश की जीत के ।
देश जीता रहे, गीत गाते रहो,
धीरता से भरे वीरता प्रीत के ॥

मान मर्दित करो वैरियों का सदा,
मान लो आप भी देश को मान दो ।
राष्ट्र की मृत्तिका मांगती है लहू,
दे लहू लो बचा देश की आन को ॥

अन्तिम सत्य

धीर बनो तुम वीर बनो ।
चीर कलेजा दे दुश्मन का ज़हर बुझा वह तीर बनो ॥

मरें मिटें अरि सेनानी,
अमर रहें हिन्दोस्तानी,
सोचो संभलो मिल जुल कर सब और जहां के पीर बनो ॥

अपने प्रण पर अटे रहो,
धर्म युद्ध में डटे रहो,
आने वाले युग पंथी जो उनके लिये लकीर बनो ॥

आखिर है सब को मरना,
मरने से फिर क्या डरना,
बिजली सा काटे दुश्मन जो वीरों की शमशीर बनो ॥

तन धन का तुम मोह तजो,
करना तुम विद्रोह तजो,
बान्ध सको अरि-सेनानी मिल जुल कर वह जंजीर बनो ॥

दानवता मिट जायेगी,
मानवता रह पायेगी,
अन्तिम सत्य यही जग का धर मन में तुम गंभीर बनो ॥



अनलपक्ष

अनलपक्ष बन नर नभ में उन तारों के संग खेलूंगा,
चन्द्रकिरण को पकड़ अरे उस चन्द्रलोक में विचरूंगा ॥
जहां विचरते शून्यांगन में रवि शशि तारे एक समान,
एक दूसरे को करते रहते हैं जो नित ज्योति प्रदान ॥

मैं भी अब उस नभोदेश में विचरूंगा होकर स्वच्छन्द,
नहीं जहां पर होता रहता आपस का निसदिन का द्वन्द ।
साधु भेस में अभिक लुटेरे जहां न ठगने पाते हैं,
चापलूस कर तोताचश्मी जहां नहीं उकसाते हैं ॥

जहां न मिथ्या दोषारोपण है पाखंडी संगी का,
जहां न झगड़ा व्यक्तिवाद पूंजीपति की बहुरंगी का ।
ज़हां हृदय के नहीं फफोले जलते उर के दागों से,
जहां न लगती आग सदा ही घर के दीप्त चराग़ों से ॥

जहां न होगी हिटलर शाही जहां न चर्चिल का प्रतिकार,
जहां नहीं रे फिरकादारी नारों की होगी भरमार ।
झंझावात प्रलय कारिणी हो चाहे हो चपला नृत्य,
मैं ऊपर ही उड़ता जाऊं दूर गगन पर फैला नित्य ॥

नहीं बसेरा मुझे चाहिए उड़ना मेरा काम अरे,
विपुल खुला आकाश रहेगा मेरा क्रीड़ाधाम अरे ।
वहीं सकल बीते गा ज़ीवन मेरा आठों याम अरे,
नहीं किसी से राग द्वेष का होगा मेरा काम अरे ॥

वहीं वहीं से देखूंगा मैं इस जगती के कुत्सित कृत्य,
कैसे दुख देते पूंजीपति कैसे दुखते निर्धन भृत्य ।
पर कब मैं चुप रह कर ही सह लूंगा दुख निर्धनजन का,
गाज गिराऊंगा पूंजीपति पर, बन कर शासक घन का ॥

और सुभग पखों से प्रेरित पवन झकोरों से उस ओर,
ले जाऊंगा जलदयान को, बरसाऊं कर के घन रोर ।
अनावृष्टि से जहां धरा तापित होगी निर्धन जन की,
हरे खेत हो उठें मिटे वेदना सकल निर्धन जन की ॥

तभी मनायें तन से मन से हो कर के सब एकाकार ।
इस भूमि पर सभी कहीं फिर सत्र समता की जय जयकार ॥

आदेश

जीवन का आदर्श यही हो जियो और जीने दो सब को,
पंचशील निर्माता नेहरू युग पुरुषोत्तम का कहना है।

फिर आपस में लड़ना कैसा, बात बात पर अड़ना कैसा।
अपनी, कह लो, सब की सुन लो,
प्रजा तन्त्र के इस नव युग में सब की बातें मन में गुण लो,
रह कर अलग बिगड़ना कैसा, जीवित यदि जग में रहना है।

जग को आंख दिखाना कैसा, अपना आप बचाना कैसा,
स्वयं दूसरों की भी मानों,
अपनी बात मनानी हो तो सब को तुम अपने सा जानों,
पर अधिकार दबाना कैसा, सब को सब का सब सहना है।

आप जगोगे विश्व जगेगा, दिनमणि दमके तमस् भगेगा,
सोच यही कुछ अपने मन में,
स्वयं संभालो अपने पन को, बिजली सी भर दो जन जन में,
विश्व शान्ति के रग रंगेगा, यही शान्ति सुख का गहना है।

जीवन का आदर्श यही हो जियो और जीने दो सब को
पचंशील निर्माता नेहरू युग पुरुषोत्तम का कहना है।

गौरील्ले

है लड़ने की शक्ति कहां ।
बहकावे में आकर भूले, झूठे लोभ हिंडोले झूले,
लूट हमारी मुल्क तुम्हारा कहते-कहते हो तुम फूले,
होता स्पष्ट यही, तुम में है प्रजाराज की भक्ति कहां ।
है लड़ने की शक्ति कहां ।

लाखों दम्भ भरे हैं मन में,लुकते छिपते रहते बन में,
प्रजावर्ग को पीड़ित करने संध्या को आते हो रण में,
अन्य देश की हरो देवियां भली राज्य अनुरक्ति यहां ।
है लड़ने की शक्ति कहां ।

वार नहीं तुम सह पाओगे, हार गौरील्लो तुम जाओगे,
हाथ मलोगे पछताओगे, ऐसी ही मुंहकी खाओगे,
प्राण बचाने की भी तुम को सूझे गी फिर युक्ति कहां ।
है लड़ने की शक्ति कहां ।

अब भी छोड़ो रे दानवता, सीखो भी कुछ रे मानवता,
इस पशुता से नाश करोगे क्या औरों की भी पावनता,
एक नहीं फिर तुम सा बाकी कोई रहेगा व्यक्ति यहां ।
है लड़ने की शक्ति कहां ।



मुंह की खालो

अरि सेनानी चोर लुटेरो अपना आप संभालो
कौन बहक में आकर अपने नाहक प्राण गवाते,
किस कारण रण ठान पड़ोसी से तुम वैर कमाते,
तुम क्या हिन्दी सैनिक दल से बड़े बड़े थर्राते,
उनका नाश सदा होता जो इन से भिड़ जाते।
आए मुंह का कौर छीनने अब तुम मुंह की खालो।

वार निहत्थों पर होते हैं देखे गए तुम्हारे,
बाल वृद्ध वनिताओं के तुम बने रहे हत्यारे,
नगर किये बरबाद फूंक सब बसते गांव उजाड़े,
बे घर बार किया जनता को यही मनुजता क्या रे !
आए भारती वीर भगो या अपना आप मिटा लो।

फ्लेम थ्रूअर मार्टर थ्री नट थ्री तुम क्या पहचानो,
राकट तोप विमानों टैंकों को तुम तब ही जानो,
मिट जाओ या नाक रगड़ कर धाक हमारी मानो,
आई कौन कयामत कहते धूल सदा फिर छानो।
सोचो मिट जाने से पहले अपना आप बचा लो।
अरि सेनानी चोर लुटेरो अपना आप संभालो।

सीमा का पंछी

उड़ा जा रहा, लेकर पेशी, पंछी एक गगन में,
अपनी धुन में जल्दी-जल्दी हो प्रसन्न निज मन में।
सोच रहा था अब तो मैं भी भूख मिटा पाऊंगा।
अपने नन्हें बच्चों को भी खूब रिझा पाऊंगा।

फुदक फुदक कर डाल डाल पर तरुओं के गाऊंगा,
भर उड़ान मन बहलाऊंगा निज को हर्षाऊंगा।
इतने में विपरीत दिशा से एक विहग दल आया,
लगा झपटने उस पंछी पर तो फिर वह चिल्लाया।

कहने लगा कहो क्यों छीनो कौर भला तुम मेरा,
तुम ने मेरे ऊपर नीचे डाल दिया क्यों घेरा ?
वह देखो तो दूर धरा पर कितने शव सड़ते हैं,
नोच नोच कर मांस शवों का वृद्ध गृद्ध लड़ते हैं।

तुम भी जाओ वहीं, मनाओ मौज, उड़ा कर पेशी,
पेशी जिस का स्वाद लवणमय कोमल मृदुतर पेशी।
जिस को खा कर तुलना में है स्वाद न कोई भाता,
याद मांस का इस से अच्छा स्वाद न कोई आता।

इसी लिये ले नीड़ ओर हूं पेशीं उड़ता जाता,
गीत मनुज की आज़ादी का मन ही मन में गाता ।
बात 'कहो क्यों छीनो मेरा कौर' चंचु हिलते ही,
गिरी मांस की पेशी भू पर, कहते फिर मिलते ।

गिरी गिरी वह तत्क्षण भू पर उन्हें न मिलने पाई,
उनकी आशा कलिका तत्क्षण तनिक न खिलने पाई ।
क्षिप्र गति से पंख पसारे उधर मुड़ा तब पछी,
जहां पड़े शव देखे सड़ते उधर उड़ा तब पछी ।

आगे आगे वह पंछी था पीछे और विहग थे,
नेता जनता से लगते वे उड़ते हुए सुभग थे ।
देख रहे थे भूपर कितना रुधिर बहा जाता है,
सोच रहे थे कभी कहीं ऐसा अवसर आता है ।

जब हम पशु क्या मानव का भी मांस उड़ा पाते हैं,
अपने मन का अपने मन को स्वाद जुड़ा पाते हैं ।
देखा अगनित कंकालों को और अस्थि पंजर भी,
देख जिन्हें रोता है मानव और लगे फिर डर भी ।

और बढ़ आगे तो देखा अगनित गीध उछलते,
मोड़ मोड़ मस्ती से ग्रीवा फुदक फुदक कर चलते ।
धीरे धीरे पहुंच रहे थे शव के पास किसी के,
शव क्या जीवित शव शतशः क्षत थे तन प्राण उसी के ।

एक गीधने प्रथम उसे जब काटा चचु द्वारा,
चीखा हाय न छेड़ो मुझ को, हाय गया मैं मारा !
भला करो यदि एक बार ही मेरे प्राण हरो तो,
भला करो यदि एक बार ही मेरा नाश करो तो !

मैं था प्राणी, जिसने कितने ही शिशुओं को मारा,
मैं ही कितनी अबलाओं का बना रहा हत्यारा ।
मैं ने कितने नवयुवकों को अगहीन कर डाला,
कितने बूढ़ों की आंखों का छीन लिया उज्याला ।

मेरी आज्ञा ने निर्धन जन के घर हैं जलवाए,
मेरी आज्ञा ने लाखोंपति बरबाद कराए ।
मेरी ही आज्ञा से सतियों के सत भंग हुए हैं,
मेरे कारण ये गुण्डागरदी के रंग हुए हैं ।

मानव तो मानव पशु भी तो दुखी हुए सब मुझ से,
खेत उजाड़े गए पड़ोसी के थे जब तब मुझ से ।
हूं नेता गुण्डाशाही का हत्यारा अधिकारी,
मज़हब का दीवाना बन सब मैं ने की मक्कारी ।

जान गया अब कब मज़हब से राज चला करते हैं,
समझा दीन-दिवाना बन कब काम भला चलते हैं ।
जहांगीर और अकबर शाहजहां से शाह हुए हैं,
धर्म धुरन्धर हो भी कितने बे परवाह हुए हैं ।

उनके शासन में शासित हिन्दू मुस्लिम सब सम थे,
हिन्दू का मुस्लिम मुस्लिम का हिन्दू भरते दम थे ।
लड़ते थे सैनिक से सैनिक, प्रजा न पीड़ित होती,
हिन्दू मुस्लिम राजाओं की प्रजा नहीं थी रोती ।

बुरा खुदा हो ! उसका, जिसने हम को था बहकाया,
बुरा खुदा हो ! उसका, जिसने हिन्दी से मरवाया ।
कहते हम को लूटो मारो माल तुम्हारा होगा,
कहा नहीं यह जीवन का ही वारा न्यारा होगा ।

कहा करो हमसाए देश पर हमला हो मतवाले,
कहा नहीं घर बैठे बैठे पी लो विष के प्याले ।
यों हम को घर से निकाल कर है बरबाद कराया,
खतरे में है धर्म यही कह है हम को मिटवाया ।

दीन दिवानों ने गुण्डागर्दी हम को सिखलाई,
देश विरोधी ने शस्त्रों की मदद हमें पहुंचाई ।
उसने साथ हमारे अपनी सेना भी कुछ कर दी,
मज़हब के दीवानेपन की बातें हम में भर दीं ।

अन्त काल तुम देख रहे जो हाल हुआ है मेरा,
मुझ को मेरे ही दुश्कर्मों ने यों अब है घेरा ।
सुनते थे कब उस की बातों को पंछी बेचारे,
आंखों पर एकाकी ही तो अपने चंचु मारे ।

उसकी दोनों अंखें फोड़ीं तो फिर वह चिल्लाया,
हा मैं ने आंखों के सन्मुख नारी को नचवाया ।
आंखें थीं पर नूर नहीं था इन में बसा इलाही,
भला हुआ जो हो पाई है इनकी आज तबाही ।

अन्य गीध ने उसकी जिह्वा पर फिर चोंच चलाई,
करवट ले कर जीवित मृत वह लाश गई बिलखाई ।
शब्द शून्य पर शब्द अधिक कर मन ही मन वह बोली,
हाय इसी ज़बां से मैं ने खेली खूं की होली ।

भला हुआ कट गई ज़बां भी कभी न जाये खोली,
देश बंटे चिल्लाती थी जो पाक वही अब हो ली ।
पर वे चीलें गीधें आदि कब पीछे हटती थीं
'काट काट शव' तानाशाही गुण्डे का रटती थीं—

—भला उसी का हो जिस ने है बंटवारा करवाया,
जिस ने मानव का कोमल मृदु मांस हमें खिलवाया ।



अरी आंखो !

तुम अपने से साठ गुणा शरीर को,
जो चाहती हो नाच नचाती हो।
कहो तो, क्या जादू है तुम में?
तुम्हरा उठना गिरना आना जाना, सब मानों,
मानों क्या सचमुच ही, संसार भर के लिये भयानक है !
खतरनाक है इस लिये कि इन बातों से उसे दुख होता है।
हां, सुखकर भी हैं ये बातें उसके लिये।
तब जब तुम्हारे उठने से दानव मानव बन जाए;
जब तुम्हारे गिरने से मानव अति-मानवता को प्राप्त हो जा
जब तुम्हारे आने से
संसार की महान-शक्ति का प्रत्यक्षीकरण हो,
और जब तुम्हारे जाने से, संसार भर का मोह दूर हो।

जब तुम रोती हो तो ज्ञात होता है,
तुम अपने मोतियों का दान करती हो,
इस लिये कि तुम्हें दुख न हो
जब तुम हँसती हो तो भी दुनिया कहती है
तुम अपने मोतियों को प्रियतम की भेंट कर रही हो।

कितनी महान हो तुम !

कवि लोग तुम्हारी उपमा नहीं ढूंड पाते ।
वे तुम्हें मीन, मृग, खजन, कमल और नरगिस आदि,
न जाने कितने अनेक उपमानों से सुशोभित करते हैं ।
अन्त में हार मान कहते हैं तुम यह भी नहीं हो
वह भी नहीं हो !
क्या तुम्हीं सचमुच वेद हो ?
जिन्हें जानने से संसार जाना जा सकता है !
तुम्हारी भूल से संसार भूल जाता है ।
भगवान करे, तुम किसी के दिल में न समाओ ।
किन्तु क्या कहें—तुम बिना जहान भी तो नहीं चलता !



गोआ की स्वाधीनता

गा विहग
गा गा खुशी के गीत
बाज़ी माता है अब !
हो गई स्वाधीनता की प्रात है अब !
फूल खिलते जा रहे हैं आज आशा के मनोहर ।
गीत मधुपी गा रहे हैं जागरण के ।
अब न कोई विहग पिंजरे में रहेगा,
अब न कोई दासता के दुख सहेगा ।
अब संभालेंगे जवाहर लाल अपने ।
दूर अब स्वाधीनता के गगन में रे,
वन विहारी व्योम के तुम उड़ सकोगे ।
चान्द तारों तक पहुंच कर,
इक नई दुनिया बसा पाओगे अपनी ।
हां वही
स्वाधीनता की प्रात है अब ।
गा खुशी के गीत बाज़ी मात हैं अब,
गा विहग
गा गा खुशी के गीत
बाज़ी मात है अब
हो गई स्वाधीनता की प्रात है अब ।

आज अपने देश का कण कण हुआ आज़ाद है,
छा रहा अब देश में चारों दिशा आह्लाद है ।
अब गवानी भाई भी दिल्ली के उर से उर मिला,
गा रहे हैं गीत आज़ादी के सुर से सुर मिला ।
कट गई हैं दासता की बेड़ियां,
हो गए हैं एक हम,
हो समुन्नत क्यों न अब ?
क्यों ने अपने भाव अपने चाव सब पूरे करें ?
दे नया सन्देश
शान्ति का मनोहर विश्व भर को ।
विश्व के कल्याण की जो बात है अब ।
गा विहग
गा गा खुशी के गीत ।
बाज़ी मात है अब

हो गई है प्रात अब स्वाधीनता की ।
दूसरों पर हक जिताने का सभी
झगड़ा ही बस अब साफ करदें ।
और सीधे रास्ते पर जब कोई
आए स्वयं ही ।
तो स्वयं ही आज उस को माफ कर दें ।

ज़िन्दगी ज़िन्दा दिली का नाम है रे
कर दिखाएं सिद्ध सीधी बात है अब ।
गा विहग
गा गा खुशी के गीत
बाज़ी मात है अब
हो गई स्वाधीनता की प्रात है अब ।



सीमा

सीमा के आर पार
शत्रु एक दूसरे के
सीमा के भीतर सब
मित्र बन्धु अपने हैं ।

काटना कट मरना भी
सीमा ही सिखाती हमें,
अपना अपना बचाव
होता किस भान्ति कहां
घातक विस्फोटकों से,
त्रस्त भीत यन्त्रों से
बच सकते कैसे हैं ।

ध्वस्त कैसे कर सकते
घर बार दूसरों के,
अपने ही जैसे जो लोग वहां रहते हैं,
जिन के सब भाव चाव हाव
निज जैसे हैं,

जिन के घर आँगन में
खेलते किशोर शिशु,
वनिताएं ललनाएं
बेलों सी झूमती हैं
आश्रय की चाह लिये,
मन में जो सागर सा
प्यार हैं अथाह लिये ।

उन ही अबलाओं का
शिशुओं का क्रन्दन भी
जाने कब कैसे फिर
मानव के मानस की
दानवता दैत्यों सी
हर कर के मानव में
मानवता भर देगा ।

जाने कब सीमा की
सीमा को तोड़ कर
विश्व में असीम की
असीमता को भर देगा ।

और विश्व बन्धु सा
बन्धु बन मानव का
बांट निज मानस का
प्यार सब नर देगा ।



हंसी रुलाई

कितनी बार हंसा, मैं आई कितनी बार रुलाई।
पर देखो तो मेरी भाषा जगती जान न पाई ।।
हसा किस लिये शायद कोई साथ हसेगा मेरे ।
इस सूने जीवन में कोई साथ बसेगा मेरे ।।

पर इस मेरे कुटिल जगत ने
मुझ को लम्पट समझा ।
हंसते हुए सरल भावों को,
यह जग अट पट समझा ।।

आई मुझे रुलाई, कह दूं, वह क्यों मुझे रुलाए ।
एक बार तो कोई मुझ को सुख की नींद सुलाए ।।
सुख की नींद कहां बातों के मुझ पर बान चलाए !
है क्या विरह किसी का तुम को, जो लोचन भर आए ।

इस हंसने रोने में अपना,
सारा जीवन खोया ।
जीवन का मधु गीत न गाया,
नींद न सुख की सोया ।।



घर

कितना तुझ को है प्रिय घर !
बार बार उत्सुक हो हो कर दौड़ाता उस ओर नज़र !!

विह्वल हो जाता है उस बिन,
कटने कठिन हुए जाते दिन,
जब जाना होता है घर को,
रातों रात चला जाता है,
भीत नहीं कर पाते निशिचर !
कितना तुझ को है प्रिय घर !

यदपि यहां जन सुख सब तुझ को,
यदपि यहां मन खुश रख तुझ को,
रक्खा करते बन्धु यहां के,
भागा करते हो फिर भी तुम,
तोड़ प्रेम ज़जीरें पर !
कितना तुझ को है प्रिय घर !



विश्वास

जन जन पर विश्वास न होता ।

कसे कहो समझ लूं अपना,
जग का दुखना जग का तपना,
जिस का छल है माला जपना,
संवेदित निश्वास न होता ।
जन जन पर विश्वास न होता ।

मन अधरों से, अधर हैं मन से,
भिन्न यहां देखे जन जन के,
अभिक लुटेरे साधु बन के,
ठगते दिखला आशा सोता ।
जन जन पर विश्वास न होता ।

सुन्दर सचमुच आकृति सुन्दर,
ज्यों देवों के बीच पुरन्दर,
लगते हैं इक इक से बढ़कर,
पर लख कौन निराश न होता ।
जन जन पर विश्वास न होता ।



विदा

छात्राध्यापकगण होने को हो विदा
हम तुम को बस और कौन सा ज्ञान दें।
एक यही बस अन्तिम शिक्षा आप को
अपना रखना मान अन्य को मान दे ॥

हो कर के निष्काम कर्म करते रहो
शिशुओं के संदेह सदा हरते रहो ।
उन्हें बचाओ सदा लोभ मद काम से
मन में उन के दया-धर्म भरते रहो ॥

सच्चे अर्थों में तब गुरु कहलाओगे
जब बच्चों को जवाहर सा चमकाओगे ।
देश समुन्नत होगा अपने आप तब
ऋद्धि सिद्धि संयुक्त सम्पदा पाओगे ॥

बच्चा नर का बाप कहा जाता जहां
होता पुत्र समान पिता के है वहां ।
मन में रख सिद्धान्त यही शिक्षित करो
उन्नति का है मार्ग यही समझो यहां ॥

अपने अपने ग्राम जहां जो ज़ायेगा
शिक्षा का उत्थान अगर कर पाये गा।
तो समझो सब सफल हुआ जो श्रम किया
नहीं; प्रशिक्षण आडम्बर कहलाये गा ।।

शिक्षा का फैलाव हमारा कर्म है
शिक्षा देना सत्य यही बस धम है।
शिशुओं से हो प्यार बढ़े सम्मान तब
एक यही बस नव शिक्षा का मर्म है ।।

ऐसे शिक्षा संग संग गुरुशिष्य हों
जैसे सरिता साथ साथ दो तट रहें।
रहे न प्यासा प्रेम सलिल का फिर कोई
बीच न गुरु लघु का जब अन्तर्पट रहे ।।

धन्य हुए हम देख आप का आचरण
भूल न पायेंगे हम तुम को आमरण।
सदा सुखी हो और सदा फूलो फलो
यश हो धन हो सदा आपके आशरण ।।

दूर दूर के ग्राम ग्राम से आये थे
दूर दूर के ग्राम ग्राम को चल दिये।
निज कर्मों का फल ले कर तुम आये थे
चलते हो अब निज कर्मों का फल लिये ।।

एक वर्ष भर हर्ष मनाया साथ ही
एक बर्ष संघर्ष बढ़ाया साथ ही ।
एक वर्ष उत्कर्ष किया निज प्यार का
और दिखाए आपस में दो हाथ भी ।।

जाओ ! जाने को हम कैसे कह सकें
रह लो ! रखने का भी हम में बस नहीं ।
इतना ही सम्बन्ध निभाना था यहां
कितनी सच्ची बात कही पर रस नहीं ।।

छन्द

(१) छन्द कहूं मैं एक सखी, रखले ईश्नर टेक सखी।
अपनी प्यारी से कह देना, सदा रहें सविवेक सखी।

(२) छन्द दूसरा और कहूं, कहे बिना क्या नहीं रहूं ?
प्रेम भाव में संग तुम्हारी प्यारी सखी के सदा बहूं।

(३) छन्द तीसरा सुनो सुनो, कहदो सखी से गुनो गुनो,
सास ससुर की सेवा करना, बातें मीठी कहो सुनो।

(४) चौथा छन्द कहूं फिर आज, मात पिता की रखना लाज।
कहदो सखी से सास-ससुर घर सोच समझ कर करना काज॥

(५) छन्द पांचवां कौन कहे, बात करो जो बात रहे।
कह दो सखी से संग पति के तप वर्षा हिम वात सहे।

(६) छन्द छटा सुन लो मतिमान, सखियो तुम हो बड़ी सुजान।
कहदो ना अलबेली अलि से, मान बचा कर रखना मान॥

(७) छन्द सातवां यही यही, कहो और क्या बात रही।
मेरा उनका प्रेम अमर हो, कह दो ना वह बात सही।



असमर्थता

वे क्या मधु का दान करेंगे !

विष ही जिनका भाग बना है,
जो नित गरल पिया करते हैं,
जाने स्वाद हलाहल का ही,
वे कैसे मधुपान करेंगे ?
वे क्या मधु का दान करेंगे !

शब्द - स्पर्श - रस-रूप-गन्ध को,
शब्द - स्पर्श - रस - रूप न जानें,
ऐसा कौन ? हुए ऐसे भी,
क्या मुक्ति का भान करेंगे !
वे क्या मधु का दान करेंगे !

मुक्ति शुक्ति का अंधकार क्या,
पत्थर या मोती जिस में हों,
जो न बोलते, जाने कैसे,
मुक्त वेदना ज्ञान धरेंगे ।
वे क्या मधु का दान करेंगे !



निर्धन का धन

झूठ झूठ सब झूठ कहा है निर्धन के धन राम ।
हम ने तो देखा भाला है निर्धन का धन काम ।।
जिस से भरता पेट, वही तो काम काम बस काम ।
शक्ति पाते अंग मनुज के जिह्वा रटती राम ।।

काम राम दोनों में कहदो कौन बड़ा सुखधाम ।
जबकि काम बिन पेट न भरता कह न सकें हम राम ।।
काम करें या राम रटें हम खुजलाते रह पाम ।
एक चित्त दो काम इक समय कैसी कहते वाम ।।

राम रटें आलस्य मिले पर काम कमाए नाम ।
बिना काम के कहो न क्या है जीवन रहता ख़ाम ।।
यही यही क्या शान्ति रहें भूखे हम रटते राम ।
काम करें भर पेट जियें हो चाहे वह संग्राम ।।

रामकृपा बिन काम बने, कब मिटे भूख बिन काम ।
शंकर करलो काम राम का तब पाओ आराम ।।

मेला

जीवन अभिशापों का मेला ।
होकर बेबस जग के सुख दुख यश अपयश से खेला ॥

अपनेपन का ज्ञान न जब था,
निज गौरव का मान न जब था,
मधु विषमय का भान न जब था,
क्रीड़ाओं से हो अनुमोदित खोई शैशव की मधु वेला ॥
जीवन अभिशापों का मेला ।

जान गया जब अपनेपन को,
निज यौवन के अनुपम धन को,
मानी मद से भूले मन को,
बान्ध सका कब, रोक सका कब, योग भोग का रहा झमेला ॥
जीवन अभिशापों का मेला ।

कभी चाह से चाह मिली जब,
जीवन - नद की थाह मिली जब,
आशा बे परवाह मिली जब,
तब सहसा ही छूट गया कर, सहचर का, मैं रहा अकेला ॥
जीवन अभिशापों का मेला ।



फिर विपदाघन गरज उठे तब,
गिरि शिखरों की ओर झुके तब,
चमक-दमक कर तनिक रुके तब,
बरस पड़ा उफनाया यह नद लगी बहाने भयप्रद बेला ।।
जीवन अभिशापों का मेला ।

शैशव में नर बेबस होता,
यौवन में असमंजस होता,
जर्जर तन तब सब रस खोता,
बीतें सब यह हसते रोते तम समझा नहीं जाना उजेला ।।
जीवन अभिशापों का मेला ।

होकर बेबस जग के सुख दुख यश-अपयश से खेला ।।
जीवन अभिशापों का मेला ।



भार हरूं

दुनिया तो कहती आई है,
मैं कैसे तुम को भूल सकूं,
या कैसे तुम से प्यार करूं।

है मुझ को इतना ही कहना,
कैसे जग के चुन शूल सकूं,
मैं कैसे जग का भार हरूं।

माना मैं प्यार न कर पाया,
माना कि नहीं जी भर पाया,
विधुवदनी मृगनैनी बाला,
कोई न हृदय में धर पाया।

पर केवल इसी लिये क्या मैं

नित अपनेपन पर फूल सकूं?
मन में सुख का संसार भरूं।
मैं कैसे जग का भार हरूं।

दुनिया तो कहती आई है,
मैं कैसे तुम को भूल सकूं,
मैं कैसे जग का भार हरूं।

मैं चाहे रहा अकेला हूं,
सुख दुख का लिये झमेला हूं,
फिर भी तो सब दिन सबल रहा
मैं इन्कलाब से खेला हूं ।

जग विचलित है किस कारण से,
मैं इस के बन अनुकूल सकूं,
सुख का जग में भण्डार भरूं ।

दुनिया तो कहती आई है,
मैं कैसे तुम को भूल सकूं,
या कैसे तुम से प्यार करूं ।

इच्छा मेरी मेरे जग की,
क्यों रहे अधूरे ही मग की ?
डगमग सिंहासन ध्वस्त हुए,
सुन लो अब ध्वनि नूपुर पग की ।

कुछ ऐसा ही कर यत्न रहा

आशा झूले में झूल सकूं ।
गाया सुख की मल्हार करूं ।
मैं कैसे जग का भार हरूं !

नश्वरता का नृत्य

कैसे तुम को भूल सकूं ? मैं कैसे तुम को याद करूं ?
दिया नहीं क्या ! क्या लेने को मैं तुम से फर्याद करूं ?
देह बनाई निज मानव की मानवता से दूर किया ।
नेह बढ़ाया निजता का पर गौरव चकनाचूर किया !
देकर अपना आप मुझे, क्यों दूर रहूं, मजबूर किया,
दूरी थी स्वीकार, न फिर क्यों मुझे सुखी भरपूर किया ?
किस पर हर्ष मनाऊं ? किस पर मन का प्रकट विषाद करू ?
कैसे तुम को भूल सकूं ? मैं कैसे तुम को याद करू ?
जन के जन को चाहे तो तब जन को जन का प्यार मिले,
खोकर निज संसार तभी निज प्यारे का संसार मिले ।
प्यारे का संसार यही बस जीवन का उपहार मिले,
प्यार मिला कब? पार हुआ कब? सुख दुख ही हर बार मिले ।
सुखमय दुखमय जीवन में निज कैसे नित उन्माद भरूं ?
कैसे तुमको भूल सकूं ? मैं कैसे तुम को याद करूं ?
सूरज, चान्द, सितारे सारे किस स्नेह से जलते हैं ?
पर्वत खड़े सहारे किस के कैसे निर्झर चलते हैं ?
पल पल मरते कैसे जीवन कैसे मर मर पलते हैं ?
चढ़ते कैसे जीवन के रवि चढ़कर कैसे ढलते हैं ?
नश्वरता का नृत्य देख क्या मन को मैं साह्लाद करूं !
कैसे तुम को भूल सकूं ? मैं कैसे तुम को याद करूं ?



जीवन आग उगलता है

मैं तुझ को याद करूं, न करू, तेरा क्या घटता बढ़ता है ?
हिय सागर भाव तरंगित हो नीचे से ऊपर चढ़ता है ।

जगती के मुखिया नेतागण मनुहार कराया करते हैं,
आपस में लेने देने के व्यापार चलाया करते हैं ।
कुछ मेरा मेरे पास नहीं सब तेरा तेरे पास रहा,
कुछ लेकर ही कुछ देने के व्यवहार न भाया करते हैं ॥
पर मेरी इच्छा व्यर्थ यहां तेरी इच्छा की प्रबलता है ।

मिट्टी दी थी मिट्टी ले लो जल दिया मुझे जल देता हूं,
अनिलानल व्योम तुम्हारा है मैं तो स्वकर्म विजेता हूं ।
घरबार नहीं संसार नहीं फिर भी जगती में रहता हूं ।
मुझमें तुझमें क्या अन्तर जब तुझसा जगजाल रचेता हूं ।
आश्चर्य बना मैं कर्म निपट तू कर्त्ता बनकर छलता है ।

संसार तुम्हारा ऐसा है जिस में सुख का कुछ लेश नहीं,
जीने मरने का पचड़ा है मन भाती भाषा वेश नहीं ।
लोभी क्रोधी कपटी कामी इन्सान यहीं तो रहते हैं ।
संघर्ष नहीं जिस देश में हो ऐसा कोई भी देश नहीं ॥
खोया खोया सा क्यों न रहूं जब जीवन आग उगलता है?

मैं तुझ को याद करूं न करूं तेरा क्या घटता बढ़ता है ?



रीता घट

मेरा घट रीता फूट गया !

मधु की कौन कहे, पानी भी किस में भर कर लाऊं गी ?
बैठे प्यासे प्रियतम मेरे, क्या मैं उन्हें पिलाऊं गी ?
भले समय थी घर से निकली, ठोकर लगी, गिरी पल में।
आग लगे उस पत्थर को जो पड़े राह में छल-बल से।
ध्यानमग्न मैं प्रियतम के जा रही चली अविरल गति से।
सूझ न पाया, लचक गई, ठोकर खाई, पर थी धृति से।
यत्न किया बहुतेरा, इसे संभालूं, पर हा ! टूट गया !
रीता घट क्या, सेवा का जो मारग था वह छूट गया।
मेरा घट रीता फूट गया !

ग्रीष्म ऋतु, तिस पर दोपहरी, दूर बहुत फिर तटिनी तीर।
पहुंच गई, आशा पग धर धर, पास तीर के हुई अधीर।
ध्यान भंग हो गया अचानक, ठोकर लगी मुझे बे पीर।
उस ठोकर ने हाय सखी री ! मेरा दिया तभी उर चीर !
पीर हुई उर की फिर दूनी, बहा बहा फिर तो दृग नीर।
कुछ पल जो मैं भूल कभी देती उन का वह स्नेह गंभीर।
धर सुधि चलती पंथ, न गिरती मन बान्धे संयम ज़ंजीर।
पर हा ! सजनी, ध्यान उन्हीं का, सेवा व्रत भी लूट गया !
मेरा घट रीता फूट गया !

लौटूं घर को ? उन्हें दिखाऊंगी अब क्या मुंह जा कर के।
वे प्यासे जो मुझे निहारेंगे कुछ प्यास सुझा कर के।
मधु क्या ! जल भी नहीं !! नीर दृग केवल उन्हें दिखा करके।
लौटूंगी, उन के चरणों पर; पर क्या प्यास बुझा करके ?
कर पाऊंगी शान्त उन्हें ? हा ! मुझे अचानक पा करके,
परिरम्भन कर हृदय हृदय से, कहने लगे लगा करके —
—कड़ी धूप में कोमल तनु कह, गई कहां थी धा करके ?
क्या कुम्हलाई सुभग नहीं ? फिर बान्ध प्रेम का टूट गया !
मेरा घट रीता फूट गया !

अलस अरुण दृग मुदित हुए, सुधि भूल गई अपनेपन की,
कुछ अधर अधर से छू कहते थे बात नई अपने मन की
—इस गरमी में भी शीतलता करतूत यही परिरम्भन की,
मेरी तो बुझ सब प्यास गई, क्या बात कहूं अपनेजन की,
अनसुनी सुनी सी कहती हूं, वे कहते थे अपनी धुनकी,
प्रिय प्यास-प्यास तो कहा सही पर प्यास न थी वह जलधन की,
जो प्यास रही बसती उर में वह प्यास थी शाश्वत यौवन की,
परिहास समझ, हंस, हंसा दिया, क्या नाच नचा वह झूठ गया।
मेरा घट रीता फूट गया !



कृषि कर हैं चुकाते

छू गया जीमूत को जब दामिनी कर कोर सुन्दर।

गहर गरजा घोर घन था, थे प्रमादी दैत्य सुर नर।
विश्व मानों मत्त केकी बन गया लख श्याम घन को।
हो प्रफुल्लित मुग्धमन अवलोकता निज प्रान धन को।
विरह जल सिंचित मिला मनु प्रेम फल प्रत्येक जन को।
सिक्तता रसिका बनी उन्मत्त थे उद्‌गार शत शत।
जन्म नव म्रियमान भू पा नाचती तरुपात के मिस।
कलित कल कल कर रहे रव उमड़ते बहते सरितवर।

छू गया जीमूत को जब दामिनी का कोर सुन्दर।

कृश कृषक कुछ कर हिला कर मुदित हो गाथा सुनाते।
दिवस विस्मृत की अनोखी विगत दिन चर्चा चलाते।
जोत कुछ इक जोत कर हल हैं लगाते यों बताते;
हैं निशा आधी में उठते और फिर हल जोत पाते।
यों पसीने की जमा कर आय कृषिकर हैं चुकाते।
अन्नदाता बन जगत के भी नहीं पाते हैं सुख पर।

छू न जाये क्यों जलद को चंचला का कोर सुन्दर।



जग के सुख का सपना ले

अरघट की घट माला जैसे
नीचे रीती रीती जाती आती ऊपर जीवन भर भर ।
ऐसे ही तुम नहीं समझना पतन हुआ है कहीं तुम्हारा ।
पतन हुआ है नहीं तुम्हारा, पतन हुआ है इच्छाओं का,
पतन हुआ है अरमानों का
इच्छाएं बदला करती हैं औ' अरमान मचलते रहते ।

पतन हुआ जो पत न रहे तो पत रखने की यही रीत है,
जीत जीत् कर गए हार फिर हार हार हो गए जीत है ।

पतन हुआ था तुलसी का पर हुलसी हुलसी तुलसी पाकर
जिसने गाया गीत राम का अमर हुए तुलसी गा-गा कर ।

अरे पतन में ही जीवन का जीवन है जीवन का निर्झर,
जसे सागर में हैं मोती, जैसे धरती में है सोना,
जैसे धरती में है लोहा,
पतन अगर निश्चित ही है तो सागर में जा पैठो नीचे,
धरती को भी नित्य कुरेदो,
तुम्हें मिलेंगे मोती सोना लोहा जो जग का धन प्यारा !
जिस से जीवन-जीवन बनता, जिस से यौवन यौवन बनता,
जिस से सुखी सदा हो जनता, जिससे मन का सुमन खिलेगा ।

क्या तुम ने यह सोचा भी है ?
कब निश्चेष्ट रह सका कोई पल भर को भी ?
फिर क्यों तुम ने केवल एक पतन के कारण
है अपने मन को यों मारा ।

उठ उठ कर अब होश ज़रा कुछ रग-रग में भर जोश ज़रा कुछ
अपने जीवन घट को भर ले
अपने जीवन से जग जीवन सरस बना दे, हर्ष मना ले,
कितना हो दुर्द्धर्ष ज़माना फिर भी निज उत्कर्ष मनाले,
चुप बैठे रहने पर कोई कब जग का सम्मान पा सका ?
चुप बैठे रहने पर कोई कब है गौरव गान गा सका ?
गा ले फिर गौरव का गाना पाले फिर निज मीत पुराना,
मीत पुराना जो पाना है, गीत अमरता का गाना है,
तो निज भुजबल को अपनाले
फिर जग के सुख का सपना ले ।

परशुराम जी

आदि राम श्री परशुराम जी,
बन बीहड़ आराम कर दिये काट काट कर विटप कंटीले ।

इधर उधर धर कुधर कुचाली राजवंश नृप नष्ट कर दिये ।
धरती में धृतिमति उपजाई,
रावणारि रमणीय राम धुन
राम विजित होकर फिर गाई ।

जमदग्नि की अग्नि शिखा तुम
ब्रह्म ज्योति प्रज्वलित कर गए,
सार्थक करके ब्राह्मणत्त्व निज जगती में नव ओज भर गए ।

तुम थे योगी यति तपस्वी
पर परसे के पैनी धारा से वीरोचित गति अपनाई,
साधु सन्त की तोड़ी कारा ।

जन जन में निज गौरव गायन भरा सदा नव सद्कृत्यों से
क्लान्ति श्रान्ति निज विपुल क्रान्ति से
दूर भगा दी आर्यावर्त्त की ।

धन्य धन्य हे राम परशुधर धन्य पराक्रम शोभनीय तव,
जिस के कारण शासक शासित शिष्ट शील हो विचरे थे सब ।



जगलाज

मोहन ! मोहक मन्त्र फूंक दो मुरली मधुर बजा कर,
एक बार तो फिर चुंधिया दो नूतन साज सजाकर।
एक बार फिर पीताम्बर की पीत झलक दिखला दो।
एक बार फिर प्रेम नदी में जग सारा नहला दो॥

यहां तरसते दीन आज हैं एक एक दाने को।
यहां विलकते मीन नीर बिन ज्यों, जन कुछ खाने को।
पिसते हैं मज़दूर पीसते हैं धनवान मुरारे !
सच्चाई की गर्दन पर नित इत चलते हैं आरे !!

सुना सुदामा सखा तुम्हारा तुम ने उसको तारा,
मुट्ठी भर तन्दुल के बदले जगका धन दे डारा।
आज सुदामा बने अनेकों भारत वासी सारे,
कहो कृष्ण ! क्यों छोड़ दिया है उनको बिना उबारे ?

आज यहां है बाल डान्स में नाच रहीं बहु नारी,
तन की सुध खो अपने मन से अपनी लाज उघारी।
कहो कहो तुम श्याम कहां हो आओ हे बनवारी,
लाज बचा क्यों एक द्रौपदी की, जगलाज बिसारी॥



विश्वास करो

विश्वास करो विश्वास करो
हे चिर परिचित विश्वास करो !

अब रहा नहीं वह दिल अपना जो देखा करता था सपना,
इच्छाओं का आशाओं का औ' रहा नहीं मन का तपना ।
हूं शुद्ध बुद्ध यह आश करो ।

जो छेड़ दिया अनजाने में अपने में तुम को पाने में ।
अब जान बूझ कर छोड़ चुका छल को छल से छल जाने से ।।
अब तो कुछ रोष ह्रास करो ।

मन को मन की कुछ चाह नहीं, संसारी हूं यह डाह नहीं ।
त्यागी बन कर पर त्याग न दूं जग सुख दुख आंसू वाह कहीं ।।
ऐसा मन में आभास भरो ।

सुख दुख ही तो जग जीवन है, सुख दुख कवि का अनुपम धन है,
सुख दुख में आश निराश बसें जिन से नव भावों का घन है—
उठता मन में, मत नाश करो ।

दो शाप यही सुख दुख में पलूं, वरदान न दो यह दूर रहें ।
मेरे मानस में भावों को सुख दुख भरते भरपूर रहें ।।
मुझ पर अब मत निश्वास भरो ।

मैं मानी हूं पर मान नहीं सन्मुख कर सकता हूं तेरे ।
मैं ज्ञानी हूं पर ज्ञान नहीं सन्मुख धर सकता हूं तेरे॥
तुम केवल मन में वास करो ।

हूं ध्यानी ध्यान न धर सकता इन पत्थर की तस्वीरों का ।
अब कहना मान नहीं सकता इन पीरों का बे पीरों का ॥
तुम ही मम मधुर विकास करो ।

तुम रानी हो अपने जन की, तुम ज्ञानी हो अपने पन की,
तुम मानी हो अपने मनकी, तुम ध्यानी हो अपने धन की ।
मेरा भी ध्यान सहास करो ।

हूं दण्डय, क्षमा कब मांग रहा? पर मांग रहा सुख-दुख केवल,
मत छीन कहीं लो भावों का चलता क्रम है नित जिन के बल ।
इससे कुछ तो न निराश करो ।

विश्वास करो विश्वास करो ।
हे चिर परिचित विश्वास करो ॥

ये आंखें

ये आंखें बदनाम न करना ।

इन नयनों की बान यही है रूप निहारें रूप निहारें ।
नीर बहाए प्यासे रहकर पर कब प्यार करो, ये पुकारें ।
मुस्काओ तो मुस्का दें ये अपना मन ये पल पल वारें ।
केवल देख देख कर करते रूप तुम्हारे की मनुहारें ।
मनुहारों को कह शतानी, इन पर तुम इल्ज़ाम न धरना ।
ये आंखें बदनाम न करना ।

शब्द-स्पर्श-रस-रूप-गन्ध में, रूप दृगों का भाग रहा है ।
रूप तजें, क्या देखें फिर कह जीवित क्या अनुराग रहा है ।
प्रेम नहीं तो सृष्टि नहीं, फिर कैसे यह जग जाग रहा है ।
नयन मुंदें तो जग मिट जाता नयन खुले सदभाग कहा है ।
लोचन जलें कहा तुम मुझ को सजनी आठों याम न करना ।
ये आंखें बदनाम न करना ।

इन आँखों में बसती रहती है प्रतिपल तस्वीर तुम्हारी ।
इन आंखों में गंगा यमुना ठाठें मार रहीं मतवरी ।
इन आंखों में बस बस कर तुम, लगती मुझ को दिन दिन प्यारी
स्नेह जलाना चाहो तो तुम दो जल जाए दृग की गारी ।
मांग रहा पर याद इन्हें फिर प्रतिदिन प्रातः शाम न करना ।
ये आंखें बदनाम न करना ।



अमर कहानी

तुम भी याद करोगी रानी ।
मेरी आंखें, मेरी नज़रें, मेरी यौवन करुण कहानी ॥
कितनी बार नचा कर आंखें मौन स्वरों में गीत सुनाए ।
कितनी बार यहां जन जन ने नज़रों पर प्रतिबन्ध लगाए ।
कितनी बार सजल आंखों में डूबे मन के देश बसाए ।
कितनी बार करुण देशों के मैं ने हैं सन्देश सुनाए ।
अब तो केवल याद रहेगा सजल दृगों का बहता पानी ॥
तुम भी याद करो गी रानी ।
इतना ही तो कहना था प्रिय इन अधरों से अधर मिला दो ।
इतना ही तो कहना था प्रिय मन का सूना देश बसा दो ।
इतना ही तो कहना था प्रिय मुझ को बांहों में भर लो तुम ।
इतना ही तो कहना था सोए मानस के भाव जगा दो ।
अब न कहूं गा याद रहे प्रिय मेरी जलती हुई जवानी ।
तुम भी याद करो गी रानी ।
वही जवानी यशोधरा के जो वियोग में अमर हुई है ।
वही जवानी जो राधा के कृष्ण नाम में सुघर हुई है ।
वही जवानी जिसे उर्मिला ने वियोग में गा गा कर के,
वर्ष चतुर्दश बिता दिये फिर पाए थे दर्शन प्रियवर के ।
जिस की याद रहेगी तुम को केवल दुख की अमर कहानी ।
तुम भी याद करो गी रानी ।



बचपन

मुझ को मेरा बचपन दे दो ।
इस यौवन में क्या रखा है, केवल आकुलता - धन, ले लो ॥
मुझ को मेरा बचपन दे दो ।

था शैशव में उल्लास भरा,
भोलापन चचल हास भरा,
प्रतिमन में था विश्वास भरा,
जो पुलक किलक करता क्रीड़ाओं का था अभिनन्दन, दे दो ॥
मुझ को मेरा बचपन दे दो ।

मन भूल भूल जाता पल पल,
जब मां कह कर के रे ! खल ! खल ॥
पीटा करती, करता जब छल,
पल रोता, फिर हंस लेता मैं, मुझ को वह हास-रुदन दे दो ॥
मुझ को मेरा बचपन दे दो ।

इस यौवन में क्या रखा है, केवल आकुलता - धन, लें लो ॥
मुझ को मेरा बचपन दे दो ।



क्या बोलूं

मैं क्या बोलूं ?
बिन समीर के जो पतंग सा डोलूं !

जग की पीड़ा मुझ में विलीन, मैं हासहीन जग अश्रुहीन।
बन दीन अहो फिर भी प्रवीण, भरना चाहूं पर सुख नवीन।
अपने उर से जग के उर को कैसे तोलूं ?
मैं क्या बोलूं ?

जग के उर अधर हुए छलमय, रच हिंस्त्र कला, कर द्वेश निचय।
करना चाहता अहिंसा क्षय, तज प्रेमभाव मृदु निर्भय पय।
कौन यत्न कर धूलि धूसरित विश्वानन धो लूं ?
मैं क्या बोलूं ?

चिर साध यहां सब हुई विफल, है वहां महार्णव उथलपुथल।
हो कैसे वह चंचल अविकल, हूँ इसी लिये मैं सतत सजल।
छलमय के सन्मुख कह कैसे मैं सरस सरल मन खोलूं ?
मैं क्या बोलूं ?

सोचूं होता जो वही सही, है सत्य उक्ति जो कहीं कही।
यह कि परिवर्तनशील मही, कब कहे किसी के रुकी रही।
क्यों अपने मृदु भावसुमन जगती रज में रोलूं ?
मैं क्या बोलूं ?
बिन समीर के जो पतंग सा डोलूं !

भूल न जाना

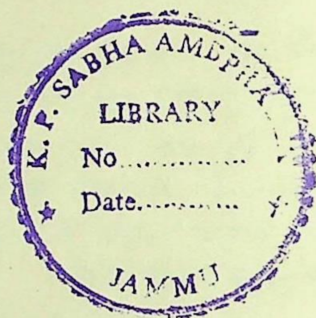
हम को भूल न जाना, भय्या !
सुख दुख हानि लाभ सब रह कर साथ २ हो तो हैं झेले ।
कितनी बार मनाए हम ने अरमानों के निसिदन मेले ।
कितने हम ने जीतहार के खेल साथ ही रहकर खेले ।
जाते हुए पुरानी यादों के कुछ सपने हम से ले ले ।
किन्तु हमारी भी यादों में बार बार फिर आना, भय्या !

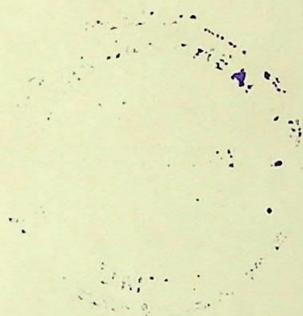
चन्दा सूरज तारे सारे लौट लौट फिर फिर आते हैं ।
आ आ कर दुनिया को नूतन सवितामय करते जाते हैं ।
बार बार आने से क्या वे जग में नित ही घबराते हैं ।
कर्म योग के गीत सभी वे नित ही खुश होकर गाते हैं ।
ऐसे ही आशा है फिर भी गीत कर्म के गाना, भय्या ।

माना अब अवकाश मिला है और यहां से जाना होगा ।
आशा है सौ बार यहां फिर लौट कभी तो आना होगा ।
कुआं कुआं मिले न चाहे रूह रूह से मिल जाती है ।
टूटे मन के तार जोड़ फिर गीत कर्म के गाना होगा ।
नम्र निवेदन है फिर भी तो प्रेम भाव दिखलाना, भय्या !

आते हैं सब बारी बारी आ आ कर फिर चल देते हैं ।
कुछ मन भाई बातें करते कुछ जग भाई कर लेते हैं ।
देते हैं सुख लेते हैं सुख दुख दे कर कुछ दुख लेते हैं ।
सम रह कर पर कोई विरले जीवन की नय्या खेते हैं ।
सम रह खे ली नय्या झंझा में पतवार चलान, भय्या ।
हम को भूल न जाना, भय्या !







शुभ कामना

श्री शंकर दास शर्मा 'पिपासु' के इस कविता-संग्रह की रचनायें निर्देश करती हैं कि वह भावनाओं तथा प्राणों की ज्वाला के आत्मनिष्ट कवि हैं। मानव हृदय के अति निकट होने के कारण उन की कवितायें संवेदनायुक्त हो कर प्राणों की गहराई में उतरती हैं।

श्री पिपासु ने जहां छायावादी रहस्यवादी वाणी में कहा है :—

"है वह कौन सी मुस्कान"

अथवा जहां हालावादी स्वर में व्यक्त किया है कि :—

"प्राणों का आसव व्याकुल हो जीवन शराव से ढलक रहा"

वहां समय और राष्ट्र की आवश्यकतानुसार उन्हों ने यह गर्जन भी किया है कि :—

"राष्ट्र की मृत्तिका मांगती है लहू
दे लहू लो बचा देश की आन को"

पिपासु की भाषा रसभीनी, भावसिक्त, गतिद्रवित, व्यथामथित और बोल-चाल की भाषा है। इन की कविता में भावव्यंजना व चित्रसज्जा के अनेक उदाहरण मिलते हैं। कला शिल्प में सादगी और स्वच्छता है।

आशा है कि साहित्य प्रेमी जनसमाज इस कविता संग्रह का विशेष सम्मान करेगा।

प्रो० जगदीश प्रसाद द्विवेदी
प्रधान
हिन्दी साहित्य मण्लड जम्मू